वैज्ञानिक आईने में जैन धर्म

श्री राजीव प्रचंडिया

राग और द्वेष अर्थात् कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) के विजेता जिन[1] तथा जिन के मार्ग का अनुसरण करने वाले व्यक्ति वस्तुतः जैन कहलाते हैं।[2] यथार्थतः जैन वह है जो रूढ़ि परम्पराओं से दूर हटकर स्वतन्त्रता पूर्वक आत्मोदय में लीन रहता है। अनुरोध और विरोध परक परिस्थितियों में वह सर्वथा माध्यस्थभाव रखता है। सबके उदय में उसे प्रमोद पुलकन होती है।

धर्म के स्वरूप को स्थिर करते हुए भारतीय आचार्यों ने मूलतः दो व्याख्यायें स्थिर की हैं--एक महर्षि वेद व्यास की जिसमें कहा गया है कि "धारणाद्धर्म"—जो धारण करता है, उद्धार करता है अथवा जो धारण करने योग्य हो, उसे धर्म कहा जाता है। दूसरी व्याख्या है जैन परम्परा की जिसमें कहा गया कि वस्तु का अपना स्वरूप ही धर्म है।[3] धर्म आत्मतत्त्व के वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करता है। वस्तुतः धर्म मानव जीवन का मूलाधार है।

जीवन में उपयोगिता की दृष्टि से धर्म और विज्ञान दोनों का स्वतन्त्र महत्त्व है। ये दोनों ही सत्य तक पहुंचने के माध्यम हैं। विज्ञान भौतिक प्रयोग-शाला में किसी वस्तु की सार्वभौमिक सत्यता को उद्घाटित करता है। पर धर्म जिज्ञासा-अनुभव के आधार पर आत्म प्रयोग शाला में सत्य को खोजता है। दोनों का माग्र्य तो एक ही है। सत्य को पहिचानना-परखना किन्तु मार्ग अलग-अलग हैं।

वैज्ञानिक आईने में जैन धर्म पर यहां चर्चा करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

जैन धर्म प्रकृति के अनुरूप होने के कारण व्यावहारिक तथा जीवनोपयोगी धर्म है। इसकी मान्यतायें वास्तविकता की सुदृढ़ नींव पर अवस्थित और विज्ञान सम्मत हैं। अतएव यह एक वैज्ञानिक धर्म है। यह निर्विवाद सत्य है कि अणु, परमाणु, जीव, पुद्गल, वनस्पति आदि का जितना विशद और सूक्ष्म विश्लेषण जैन दर्शन करता है। उतना विज्ञान सम्मत दर्शन अन्य किसी धर्म का नहीं है। जैन धर्म का लक्ष्य पूर्ण वीतराग—विज्ञानिता की प्राप्ति है। यह वीतरागता सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय की समन्वित साधना से उपलब्ध होती है। श्रद्धा, ज्ञान और चरित्र का मिला जुला पथ ही व्यक्ति को मुक्ति या सिद्धि तक ले जाता है। क्योंकि ज्ञान से भावों (पदार्थों) का सम्यक् बोध होता है, दर्शन से श्रद्धा होती है।[4] जब तक यह आत्मा कर्म द्वारा आच्छादित है, तब तक उसका वास्तविक स्वरूप अप्रकट रहता है। यह निश्चित सिद्धान्त है कि आत्मा के बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान के बिना आत्मा नहीं।[5] आत्मा और ज्ञान का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है, शाश्वत है। जैन धर्म स्वीकारता है कि आत्मा नित्य है, अविनाशी है एवं शाश्वत स्वतन्त्र द्रव्य है।[6] उत्पादन के अभाव में इसकी उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। जिसकी उत्पत्ति नहीं, उसका विनाश भी नहीं होता है।[7] अतः वह अनादि है तथा विभिन्न योनियों में अनन्त काल से परिभ्रमण करता रहता है।[8] जैन दर्शन की वह मान्यता विज्ञान सम्मत है। विश्व-विख्यात वैज्ञानिक सर डाल्टन का परमाणुवाद जैन दर्शन के आत्मवाद से साम्य रखता है।

---

१. "जिदकोहमाणमायाजिदलोहातेण ते जिणा होंति।"—मूलाचार, गाथा सं० ५६१, अनन्तकीर्त्तिग्रन्थमाला, वि० सं० १९७६

२. "जिनस्य सम्बन्धीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम्।" —प्रवचनसार, गाथा सं० २०८

३. "वत्थु सहावो धम्मो।" —कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा सं० ४७८, राजचन्द्र ग्रन्थमाला, सन् १९६७

४. "णाणेण जाणई भावे, देसणेण य सद्दहे।
चारित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झई॥" —उत्तराध्ययनसूत्र २८-३५

५. "अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो न संदेहो।" —नियमसार, गाथा सं० १७१

६. "णिच्चो अविणासि सासओ जीवो।" —दशवैकालिक, निर्युक्ति भाष्य, ४२

७. "नत्थि जीवस्स नासोत्ति।" —उत्तराध्ययनसूत्र, २-२७

८. "सव्वेसमकम्म कप्पिया।" —सूत्रकृतांग, १-२-३-१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सृष्टि रचना के सम्बन्ध में विभिन्न मान्यतायें प्रचलित हैं। किन्तु वैज्ञानिक विकास के इस युग में उनमें अधिकांशतः कल्पना मात्र प्रतीत होती हैं। इस संदर्भ में जैन धर्म की मान्यता विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती है। जैन धर्म के अनुसार संसार जड़ और चेतन का समूह है जो सामान्य रूप से नित्य और विशेषरूप से अनित्य है। जड़ और चेतन अनेक कारणों से विविध रूपों में रूपांतरित होते रहते हैं। रूपान्तर की इस अविराम परम्परा में भी मूल-वस्तु की सत्ता का अनुगमन स्पष्ट है। इस अनुगमन की अपेक्षा से जड़ और चेतन अनादि हैं। सत् का शून्यरूप में परिणमन नहीं हो सकता है, और शून्य से कभी सत् का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता है किन्तु पर्याय की अपेक्षा से वस्तुओं का उत्पाद और विनाश अवश्य होता है। परन्तु उसके लिए देव, ब्रह्म ईश्वर, या स्वयंभू की आवश्यकता नहीं होती, अतएव न तो जगत् का कभी सृजन होता है न विसर्जन। इस प्रकार संसार की शाश्वतता सिद्ध है। इसकी पुष्टि प्राणी शास्त्र के प्रसिद्ध विशेषज्ञ श्री जे० बी० सी० एस० हाल्डेन ने भी अपने सृष्टि विषयक मत में की है कि "मेरे विचार में जगत् का कोई आदि नहीं है।" सृष्टि विषयक यह सिद्धान्त अकाट्य है और विज्ञान का चरम विकास भी कभी इसका विरोध नहीं कर सकता।

अवतारवाद के सम्बन्ध में जैन धर्म का अपना अलग दृष्टिकोण है। वह अनन्त आत्मायें मानता है। वह प्रत्येक आत्मा को परमात्मा बनने का अधिकार प्रदान करता है तथा परमात्मा बनने का मार्ग भी प्रस्तुत करता है किन्तु यहां परमात्मा के पुनः भवांतरण को मान्यता नहीं दी गई है। इस धर्म के अनुसार प्रत्येक आत्मा कृत कर्मों का नाश करके परमात्मा बन सकती है।[१] स्वरूप दृष्टि से सब आत्मायें एक (समान) है।[२] यहां तक कि हाथी और कुंथुआ दोनों में आत्मायें समान हैं।[३] वास्तव में सब आत्मायें अपने आप में स्वतंत्र तथा पूर्ण हैं। वे किसी अखण्ड सत्ता की अंशभूत नहीं है। प्रत्येक नर को नारायण और भक्त को भगवान् बनने का यह अधिकार देना ही जैन धर्म की पहली और अकेली मान्यता है। इसी आधार पर जैन धर्म में व्यक्ति विशेष की अपेक्षा यहां मात्र गुणों के पूजने का विधान है। उसका आद्य मन्त्र णमोकार मन्त्र (नमस्कार मन्त्र) है।[४] गुणों के व्याज से ही व्यक्ति को स्मरण किया जाता है। शरीर तो सर्वथा वन्दना के अयोग्य है।[५] क्योंकि किसी कार्य का कर्त्ता यहां परकीय शक्ति को नहीं माना गया है। अपने-अपने कर्मानुसार प्राणी स्वयं कर्त्ता और उसका भोक्ता होता है।[६] इसीलिए पूजा की सामग्री जिसे जैन धर्म में अर्घ्य और जैनेतर लोक में भोग कही जाती है। वह यहां वस्तुतः निर्माल्य होती है। यह अर्घ्य तो जन्मजरादि कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त्यर्थ शुभ का प्रतीक है।[७] अतएव सर्वथा अग्राह्य-निर्माल्य होता है। सम्भवतः विश्व के किसी भी धर्म में ऐसी सर्वांगीण तथा समस्पर्शी भावनायें दृष्टि गोचर नहीं होती है।

जैन-धर्म कर्मवाद पर आधारित है। राग-द्वेष ये दो कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वस्तुतः दुःख है।[८] संसार का मूल कर्म है और कर्म का मूल कषाय है।[९] इन कषायों को क्षय किये बिना केवल ज्ञान (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति नितान्त असम्भव है।[१०] जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने ही कृत कर्मों से कष्ट पाता है।[११] आत्मा स्वयं अपने द्वारा ही कर्मों की उदीर्णा करता है। स्वयं अपने द्वारा ही उनकी गर्हा— आलोचना करता है और अपने कर्मों के द्वारा ही कर्मों का संवर, आस्रव का निरोध करता है।[१२] यह निश्चित है कि जैसा व्यक्ति कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है।[१३] ध्वनि संचालित यन्त्र में जिस प्रकार की ध्वनि संचित की जाती है उसी क्रम में ध्वनि का प्रसारण भी होता है। जैन धर्म का कर्म सिद्धान्त वैज्ञानिक यंत्र-ध्वनि

---

१. "अप्पोविय परमप्पो कम्म विमुक्को य होई फुडं।" —भावपाहुड, गाथांक १५१
२. "एगे आया।" —समवायांगसूत्र १-१
३. "हत्थिस्स य कुंथुस्स य समेचेव जीवो।" —भगवतीसूत्र ७-८
४. "णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमोउवज्झायाणं, णमो लोय सव्व साहूणं।" —षट्खण्डागम, पुस्तक सं० १, खंड सं० १, पृ० सं० १, सूत्र १-८
५. "णवि देहो वंदिज्जइ, णवियकुलो ण विय जाइ संजुत्तो।"
   को वे देइ गुणहीणो णहुं सवणो णेय सावओ होई।" —दंसणपाहुड, गाथा २७
६. "अप्पाकत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
   अप्पामित्तं मित्तं च, दुप्पट्ठि सुप्पट्ठिओ॥" —उत्तराध्ययनसूत्र २०, ३७
७. "वार्धारा रजसः शमाय पदयोः सम्यक्प्रयुक्ताहितः सदगंध स्तनुसौरभाय विभवाच्छेदाय संदक्षताः यष्टुः स्रग्दि-विजस्रजेन्चरुरुमास्वाम्यायदीयहित्वषै धूपो विश्वदृगत्सुवाअफलभिष्यर्थायचार्घायसः।" —सागारधर्मामृत, श्लोक सं० ३०
८. "रागो य दोसोवि य कम्मवीयं कम्मं च मोहप्प भवं वयंति कम्मं च जाई मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई मरणं वयंति।"— उत्तराध्ययनसूत्र, ३२-७ गाथांक।
९. "संसारस्स उ मूलंकम्मंतस्सविहुंति य कसाया।"—आचारांग-निर्युक्ति, गाथा १७९
१०. "केवलियमाणलम्भो, नन्नत्थ खए कसायाणं।" —आवश्यक-निर्युक्ति, गाथा १०४
११. "सकम्मुणा विप्परिया सुवेइ।" —सूत्रकृतांग, १-७-११
१२. "अप्पणा चेव उदीरेइ, अप्पणा चेव गरहइ, अप्पणाचेव सवंरइ।', —भगवतीसूत्र, १-८
१३. जहा कडं कम्म, तहासि भारे।" —सूत्रकृतांग, १-५-१-२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संचालित यन्त्र—के सिद्धान्त के अनुरूप ही है। जैन धर्म ने अणु-सिद्धान्त को सर्वप्रथम माना और उसका सूक्ष्म विवेचन किया है। उसके अनुसार कर्मवाद इस अणु सिद्धान्त पर अवलम्बित है। जैन धर्म की इस अणु सम्बन्धी मान्यता को वैज्ञानिक अत्यन्त प्राचीन तथा विज्ञान सम्मत मानते हैं।[१]

आत्मा और अणु की गति क्रिया का विश्लेषण करते हुए जैन आचार्यों ने एक उदासीन माध्यम के रूप में धर्म द्रव्य का निरूपण किया। धर्म द्रव्य पदार्थ मात्र की गति का निष्क्रिय माध्यम, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित अखण्ड सत्ता रूप है। जैन आगम में धर्म द्रव्य को धर्मास्तिकाय भी कहा गया है। धर्मास्तिकाय वर्ण, गन्ध रस, स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोक व्याप्त द्रव्य है।[२] धर्मास्तिकाय न स्वयं चलती है और न किसी को चलाती है। वह तो केवल गति शील जीव व पुद्गल की गति का प्रसाधन है। मछलियों के लिए जल जैसे गति में अनुग्रह शील है उसी प्रकार जीव पुद्गलों के लिए धर्म द्रव्य है।[३] यही बात ईथर के रूप में विज्ञान कहता है। ईथर की स्थिति को समझने के लिए समय-समय पर विविध प्रयोग हुए हैं। अन्त में यह निष्कर्ष निकला कि धर्म द्रव्य या ईथर अभौतिक, अपरमाणविक, अविभाज्य, अखण्ड, आकाश के समान व्याप्त, अरूप, गति का अनिवार्य माध्यम और अपने आप में स्थिर है। वास्तव में जो धर्म द्रव्य है, वही ईथर है और जो ईथर है वही धर्म द्रव्य।

पृथ्वी किस आधार पर टिकी है। इस सम्बन्ध में अनेक धर्म सन्तों ने विभिन्न उत्तर दिये हैं किन्तु इस संदर्भ में इनके सारे दृष्टिकोण भौतिक युग में कल्पना मात्र रह गये हैं। परन्तु जैन आगमों की मान्यता इस सम्बन्ध में भी वैज्ञानिक है। उसके अनुसार इस पृथ्वी के नीचे धनोदधि (जमा हुआ पानी) है, उसके नीचे तनुवात है और तनुवायु के नीचे आकाश स्वप्रतिष्ठित है, उसके लिए किसी आधार की आवश्यकता नहीं है।[४]

जैन धर्म जीवों का सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक वर्णन करता है। वनस्पति, पृथ्वी, जल, अग्नि में जीव मान्यता भी जैन धर्म में अनूठी और आदिकालीन है। उसके अनुसार प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है। जैन धर्म में दो प्रकार के जीवों—त्रस और स्थावर का वर्णन है।[५] स्थावर वे जीव होते हैं जिनमें केवल स्पर्शन इन्द्रिय होती है। अर्थात् केवल स्पर्श करने की शक्ति उनमें विद्यमान रहती है। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति। त्रसजीव दो से पांच इन्द्रियों (स्पर्शन, रसना, प्राण, चक्षु, तथा कर्ण) वाले होते हैं उदाहरणार्थ शंख, सीप, चीउटी, मक्खी, मच्छर, कुत्ता, बिल्ली तथा मनुष्यादि। इतना ही नहीं जैन दर्शन ने तो वनस्पति काय के जीवों की आयु को भी स्पष्ट किया है उसके अनुसार इन वनस्पतिकाय के जीवों की उत्कृष्ट दश हजार वर्ष की आयु होती है। और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयु स्थिति है।[६] बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डा० जगदीश चन्द्र वसु ने अपने विभिन्न प्रयोगों द्वारा वनस्पति में जीवन है इस बात की पुष्टि कर सारे विश्व को आश्चर्य में तो डाल ही दिया है साथ ही जैन धर्म को इस संदर्भ में विज्ञान सम्मत बताया। श्री साइकस ने भूमि की एक क्यूबिक इंच भाग में पांच मिलियन जीवित कीटाणु सिद्ध किये हैं।[७] इस प्रकार विज्ञान ने समय-समय पर अनेक वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार कर यह स्वीकार किया जैन धर्म कोरा काल्पनिक नहीं अपितु एक वैज्ञानिक धर्म है। यह धर्म वास्तव में प्रामाणिकता पर आधारित है।

जैन धर्म सर्वांगीण दष्टिकोण को लेकर चलता है। यह दृष्टिकोण विश्व के दर्शनों, धर्मों, सम्प्रदायों एवं पन्थों का समन्वय

---

१. "इन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड ईथिक्स—भाग २, पृष्ठ १९९-२००, डॉ० जैकोबी

२. "धम्मत्थिकाएणं भन्ते कति वण्णे कति रसे कतिफासे ? गोयमा। अवण्णे अगन्धे अरसे अफासे अरूवी अजीवे सासए अवट्ठिए लोकदव्वे"—भगवतीशतक, २, उद्देशक १०

३. "न च गच्छतिधर्मास्ति को गमनं न करोत्यन्य द्रव्यस्य।
भवति गतेः प्रसरो, जीवानां पुद्गलानां च॥
उदकं यथा मत्स्यानां, गमनानुग्रहकरं भवति लोके।
तथा जीवपुद्गलानां, धर्मद्रव्य विजानीहि।" —पञ्चास्तिकाय, ८५-८२

४. भगवतीसूत्र, श० १, उ० ६

५. "संसारत्था उजे जीवा, दुविहा ते वियाहिया।
तसायथावराचेव, थावरा तिविहातहिं॥" —उत्तराध्ययनसूत्र, अध्याय ३६, गाथा ६८

६. "दस चेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।
वणफफईण अखण्ड तु, अन्तोमुहुत्तं जहन्नगं॥" —उत्तराध्ययनसूत्र, अध्याय ३६ गाथा १०२

७. "We find that the soil is life and that a living soil contains a mass of micro-organic existence the earth worm the fuongi and the micro-organisms, we learn that there is a minimum of five millions of these denizens to the cubic inch of living soil." —J. Sykes the Sower, (Winter 1952-53)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है। जैन धर्म के सिद्धान्त पूर्वाग्रह से सर्वथा मुक्त हैं। उसका स्याद्वादी सिद्धान्त विज्ञान के धरातल पर खरा उतरता है। स्याद्वाद एक यौगिक शब्द है। यह स्याद् और वाद दो शब्दों के योग से बना है। स्याद् कथंचित् का पर्यायवाची संस्कृत भाषा का एक अव्यय है। इसका अर्थ है—किसी प्रकार से किसी अपेक्षा से। वस्तु तत्त्व निर्णय में जो वाद अपेक्षा की प्रधानता पर आधारित है, वह स्याद्वाद है। जैन दर्शन का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक जगत् में सापेक्ष वाद से पूर्णतः साम्य रखता है। सापेक्षवाद के आविष्कर्ता सुप्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रो० अलवर्ट आइंस्टीन है। सापेक्षवाद का वही अर्थ है जो स्याद्वाद का है। **अपेक्षया सहितं सापेक्षं** अर्थात् अपेक्षा करके सहित जो है वह सापेक्ष है। अपेक्षा से जो कुछ कहा जाये उसे सापेक्षवाद कहा जाता है। जैन धर्म में सृष्टि के मूलभूत सिद्धान्तों को सापेक्ष बताया गया है। प्राकृतिक स्थितियों के विषय में वैज्ञानिक आइंस्टीन भी अपेक्षा प्रधान बात कहते हैं। सापेक्षवाद के प्रथम सूत्र के अनुसार 'प्रकृति ऐसी है कि किसी भी प्रयोग के द्वारा चाहे वह कैसा भी क्यों न हो वास्तविक गति का निर्णय असम्भव ही है।'[१] इस सूत्र से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक पदार्थ गतिशील भी है। और स्थिर भी है। यही बात स्याद्वादी कहते हैं कि परमाणु नित्य शाश्वत भी है और अनित्य भी, संसार शाश्वत भी है। द्रव्यत्व की अपेक्षा से वह नित्य है। वर्ण पर्याय, बाह्य स्वरूप आदि की अपेक्षा से अनित्य है, प्रतिक्षण परिवर्तन शील है[२] यही बात आत्मा के विषय में सुस्पष्ट है।[३]

स्याद्वाद अस्ति, नास्ति पर बल देता है। सापेक्षवाद भी है और नहीं (अस्ति-नास्ति) की बात करता है। जिस पदार्थ के विषय में यह कहा जाता है कि यह एक सौ चौउन पौण्ड का है। सापेक्षवाद कहता है कि यह है भी और नहीं भी। क्योंकि भूमध्य रेखा पर यह एक सौ चोउन पौण्ड है पर दक्षिणी या उत्तरी ध्रुव पर यह एक सौ पचपन पौण्ड है। गति तथा स्थिति आदि को लेकर वह और भी बदलता रहता है।[४] **अनन्तधर्मात्मकं** सत् अर्थात् वस्तु अनन्त धर्मात्मक है अर्थात् वस्तु अनन्त गुण व विशेषताओं को धारण करती है। जब किसी वस्तु के विषय में कुछ भी कहा जाता है तो साधारणतः एक धर्म को प्रमुख व अन्य धर्म को गौण कर दिया जाता है। इस प्रकार का सत्य आपेक्षिक होता है। अन्य अपेक्षाओं से वही वस्तु अन्य प्रकार की भी होती है। उदाहरणार्थ निम्बू के सामने नारंगी बड़ी होती है किन्तु पदार्थ धर्म की अपेक्षा से नारंगी में जैसा बड़ापन है वैसा ही छोटापन भी किन्तु वह प्रकट तब होता है जब खरबूजे के साथ उसकी तुलना की जाती है। गुरुत्व व लघुत्व जो हमारे व्यवहार में आते हैं। वे मात्र व्यावहारिक या आपेक्षिक है। वास्तविक (अन्त्य) गुरुत्व तो लोकव्यापी महास्कन्ध में है और अन्त्य लघुत्व परमाणु में।[५]

सापेक्षवाद और स्याद्वाद की इस समानता से यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म विज्ञान एवं जीवन-व्यवहार में उतरने वाला वास्तविक धर्म है।

जैन धर्म मानव समाज को अधिकाधिक सुखी बनाने हेतु अपरिग्रह पर बल देता है। अपरिग्रह का अर्थ है कि पदार्थ के प्रति आसक्ति का न होना। वस्तुतः ममत्व या मूर्च्छाभाव से संग्रह करना परिग्रह कहलाता है।[६] आसक्ति के कारण ही मानव अधिकाधिक संग्रह करता है परिग्रह को व्यक्ति सुख का साधन समझता है और उसमें आसक्त होकर वह सदा दुःखी रहता है। जबकि कामना रहित व्यक्ति ही सुखी रह सकता है।[७] क्योंकि मानव की इच्छायें आकाश के सदृश असीम है। और पदार्थ ससीम।[८] जैन धर्म का यह अपरिग्रहवाद समाजवाद का आधार माना है। यह सहज में ही कहा जा सकता है कि साम्यवादी या समाजवादी विचारधारा का मूल स्रोत सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री कार्लमार्क्स की अपेक्षा जैन धर्म के चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर महावीर से प्रारम्भ होता है। इस अपरिग्रहवाद या समाजवाद से राष्ट्र की ज्वलंत समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है। निश्चय ही जैन धर्म का यह अपरिग्रहवाद आधुनिक युग की अर्थ-वैषम्य जनित सामाजिक समस्याओं का सुन्दर समाधान है। वास्तव में जैन धर्म के सिद्धान्त वैज्ञानिक शैली में निरूपित किये गये हैं।

---

१. "Nature is such that it is impossible to determine absobute motion by any experiment what ever".
—Mysterious Uuiverse, पृ० ७८

२. भगवतीशतक, १४-३४

३. भगवतीशतक, ७-२

४. Cosmology Old and New, पृ० २०५

५. "सौक्ष्म्यं द्विविधं अन्त्यमापेक्षिकं च। तत्र अन्त्यं परमाणो आपेक्षिकं यथा नालिकेरापेक्षया आम्रस्य। स्थौल्यमपि द्विविधं तत्र अन्त्यं अशेषलोकव्यापि महास्कन्धस्य आपेक्षिकं यथा आम्रापेक्षयानालिकेरस्य।" —श्रीजैनसिद्धान्तदीपिकाप्रकाश, सूत्र ११

६. "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो।" —दशवैकालिकसूत्र, ६-१६

७. "कामे कमाही कमियं खुदुक्खं।" —दशवैकालिकसूत्र २-५

८. 'इच्छा हु आगास समा अणंहिया।" —उत्तराध्ययनसूत्र, अध्याय ६, गाथा ४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक धर्म के दो अंग होते हैं। आचार और विचार। जैन धर्म के आचार का मूलाधार अहिंसा और विचार का मूल अनेकान्तवाद है। अहिंसा आत्मा का स्वभाव है।[१] अहिंसा का प्रतिपक्ष हिंसा है। हिंसा का अर्थ है दुष्प्रयुक्त मन, वचन काया के योगों से प्राण-व्यपरोपण करना।[२] जैन धर्म प्रमाद को हिंसा का मूल स्रोत मानता है। क्योंकि प्रमादवश अर्थात् असावधानी के कारण ही जीव के प्राण का हनन होता है।[३] जैन धर्म सन्देश देता है कि प्राणी मात्र जीना चाहता है कोई मरना नहीं चाहता। सुख सभी के लिए अनुकूल एवं दुःख अनुकूल है।[४] ज्ञान और विज्ञान का सार भी यही है कि प्राणी की हिंसा न की जाय।[५] जैन धर्म ने अहिंसा के संदर्भ में जितना सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेचन किया है उतना किसी अन्य धर्म में नहीं मिलता। यह धर्म मूलतः भावना पर आधृत है। यहां हिंसा को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है—भाव-हिंसा और द्रव्य-हिंसा। जिसमें भाव-हिंसा ही प्रधान है। जैन धर्म के अनुसार "अपने मन में किसी भी प्राणी के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना रखने मात्र से ही अपने शुद्ध भावों का घात कर लेना हिंसा है। चाहे यह दुर्भावना कार्यान्वित हो या न हो और उससे किसी प्राणी को कष्ट पहुंचे या न पहुंचे परन्तु इन दुर्भावनाओं के आने मात्र से व्यक्ति हिंसा का दोषी हो जाता है।" जैन धर्म की यह शिक्षा व्यक्ति को कायर नहीं अपितु वीर बनाती है। क्योंकि "क्षमा वीरस्य भूषणम्" अर्थात् क्षमा वीर का आभूषण है, कहा गया है। यह क्षमामय वीरता जीव मात्र को अभय प्रदान करती है। वास्तव में अहिंसा सर्वथा व्यावहारिक है। भौतिक युग में शक्ति तथा समता स्थिर करने के लिए अहिंसा की चरम अपेक्षा है। अहिंसा के द्वारा अनन्त आनन्द सहज में ही प्राप्त किया जा सकता है।

सात्विक जीवन निर्वाह हेतु मनुष्य को प्रेरित करना जैन धर्म का मुख्य लक्ष्य रहा है। अतः स्वास्थ्य-रक्षा एवं आरोग्य की दृष्टि से जैन धर्म आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अत्यन्त निकट है। जैन धर्म मानव शरीर को जल सम्बन्धी समस्त दोषों से युक्त और शरीर को स्वस्थ तथा निरोग रखने की दृष्टि से शुद्ध ताजे, छने हुए और यथासम्भव उबालकर ठण्डा किये हुये जल के सेवन का निर्देश देता है।[६] स्वास्थ्य विज्ञान भी जैन धर्म के इस सिद्धान्त से पूर्णतः सम्मत है। भोजन (अहार) के सम्बन्ध में जैन धर्म का दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक है। उसके अनुसार मानव जीवन एवं मानव शरीर को स्वस्थता प्रदान करने के लिए तथा आयुपर्यन्त शरीर की रक्षा के लिए निर्दोष परिमित सन्तुलित एवं सात्विक आहार ही सेवनीय होता है। वस्तुतः समस्त हिंसा के निमित्तों से रहित आहार ही योग्य है।[७] जैन धर्म की यह मान्यता है कि सूर्यास्त के पश्चात् रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए।[८] इसका वैज्ञानिक महत्त्व एवं आधार यह है कि आस पास के वातावरण में अनेक ऐसे सूक्ष्म जीवाणु विद्यमान रहते हैं जो दिन में सूर्य प्रकाश में उपस्थित नहीं रहते। जिससे भोजन दूषित मलिन व विषमय नहीं हो पाता है। दूसरा महत्वपूर्ण सत्य है कि भोजन मुख से गले के मार्ग द्वारा सर्व प्रथम आमाशय में पहुंचाता हैं। जहां उसकी वास्तविक परिपाक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। परिपाक हेतु वह भोजन आमाशय में रहता है तब मनुष्य को जागृत एवं क्रियाशील रहना चाहिए क्योंकि मनुष्य की जागृत एवं क्रियाशील अवस्था में ही आमाशय की क्रियासक्रिय रहती है। जिससे मुक्त भोजन के पाचन में सहयोग मिलता है। इसी आधार पर रुग्ण-व्यक्ति को रात्रि काल में पथ न लेने की व्यवस्था चिकित्सा शास्त्र में है। जैन धर्म भी सूर्योदय से दो घड़ी पूर्व तक और सूर्यास्त होने पर व्यक्ति को भोजन करने की अनुमति नहीं देता है।[९] आहार सम्बन्धी नियम की यह समानता निश्चय ही जैन धर्म की आधुनिक चिकित्सा विज्ञान को एक महत्त्वपूर्ण मौलिक देन है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान धूम्रपान व मद्यपान को अस्वास्थ्य कारक बताता है। शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टि से ये पदार्थ मानव स्वास्थ्य के सर्वथा अननुकूल हैं। इस सम्बन्ध में जैन धर्म का दृष्टिकोण व्यापक है। उसके अनुसार मद्यपान से द्रव्य तथा

---

१. "अहिंसा निउणाद्दिट्ठा सव्वभूएसुसंजमो।" —दशवैकालिकसूत्र ६-९

२. "मणवपण कार्एहि जो एहि दुप्पउत्तेहि जं पाणववरोपणं कज्जइ सा हिंसा।" —जिनदासचूर्णि पृ० ६-९

३. "प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा।" —तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय सूत्र ८

४. "सव्वे णाणा पिआउयासुहसाया, दुह पडिकूला आधिव वहा।" —आचारांगसूत्र १-२-३

५. "एवं खु णांणिणों सारं जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसासमयं चेव एता वंतविसाणिया॥" —सूत्रकृतांग, श्रुति १ अध्याय १ गाथा ९

६. "मूहूर्तयुग्मोमोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालनमंबुनोवा। अन्यत्र वागालितशेपि तस्यन्यासो नियाने स्य न तद्व्रतेर्च्यः"
—सागारधर्मामृत, अध्याय ३, श्लोक सं १६

७. "समस्तहिंसा यतनशून्य एव हारो युक्ताहारः।" —प्रवचनसार, २२९

८. "राग जीव वधापायभूयस्त्वाजन्ददुत्सृजेत्।
रात्रि भक्तं तथा युंज्यान्नपानीयमगालितं॥" —सागारधर्मामृत, अध्याय २, श्लोक सं० १४

९. "मूहूर्तेऽत्ये तथाद्य हो वल्लभानस्तमिताशिनः।
गदच्छिदेऽप्याम्नं घृताद्युपयोगश्च दुष्यति॥" —सागारधर्मामृत, अध्याय ३, श्लोक सं० १५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव दोनों प्रकार की हिंसा होती है। मद्य (शराब) पीने से विचार संयम, ज्ञान, पवित्रता, दया, क्षमा आदि समस्त गुण उसी समय नष्ट हो जाते हैं। मद्य में अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और मरते रहते हैं, समय पाकर वे जीव उस मद्य के पीने वालों के मन में मोहादि उत्पन्न करते हैं जिससे अभिमान आदि कुभाव उत्पन्न होते है।[1] यह अखाद्य और अपेय पदार्थ आत्मतत्त्व को अपकर्ष की ओर उन्मुख करते हैं। ऐसे खानपान से हृदय और मस्तिष्क दोनों ही प्रभावित होते हैं फलस्वरूप स्मृति-स्खलन तथा अशुचि एवं तामसी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं।

उपर्यंकित विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जैन धर्म के सिद्धान्त केवल सैद्धांतिक या शास्त्रीय ही नहीं अपितु व्यावहारिक एवं जीवनोपयोगी हैं। जैन धर्म वस्तुतः एक वैज्ञानिक धर्म है।

दहेज—एक सामाजिक अभिशाप

आजकल की परिस्थिति में साधारण गृहस्थ के लिए विवाह करना मृत्यु के समान है। आजकल मोल-तोल होते हैं। दहेज का इकरार पहले हो चुकता है तब कहीं सम्बन्ध होता है। पूरा दहेज न मिलने पर सम्बन्ध टूट भी जाता है। दहेज के दुःख से व्यथित माता-पिताओं को देखकर बहुत सी सहृदया कुमारियाँ आत्महत्या कर समाज के इस बूचड़खाने पर बलियां चढ़ा रही हैं। अभी भी इस समाज में बहुत सी कन्याओं का तिरस्कार होता है। उनके जीवन का मूल्य भी नहीं समझा जाता। बीमार होने पर उनका पूरा इलाज भी नहीं कराया जाता। यहां तक कि कन्या का जन्म होने पर माता-पिता रोने लग जाते हैं। इसका दहेज ही मुख्य कारण है। इस समय ऐसे धर्मभीरु साहसी सज्जनों की आवश्यकता है कि सबसे पहले अन्य बातों को छोड़कर अपने सदाचार की रक्षा के लिए अथवा कुलाचार की रक्षा के लिए और सच्चे धर्म की प्राप्ति करनी हो तो जल्दी ही इस बुरी प्रथा को छोड़ दें और अपने लड़कों के विवाह में दहेज के लेन-देन की प्रथा बन्द कर दें। यह कुप्रथा लड़के वालों के स्वार्थ-त्याग से ही मिटेगी अन्यथा नहीं। यदि यह रिवाज चलता रहा तो समाज की भीषण स्थिति हो जाएगी।

—आचार्य श्री देशभूषण, उपदेशसारसंग्रह, कोथली, १९७९, पृ० ३२-३३ से उद्धृत

१. "तन्मद्यं व्रतयन्न धूर्तिलपरास्कंदीव यात्यापदं।
तत्पायी पुनरेक पादिव दुराचारं चरन्मज्जति॥" —सागारधर्मामृत, अध्याय २, श्लोक सं० ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org